International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(2): 01-03

International Journal of Sanskrit Research
अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(2): 01-03
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 01-01-2022
Accepted: 04-02-2022

डा. जगमोहन
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, हिन्दू महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डा. जगमोहन
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, हिन्दू महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

महाभाष्य का सरस्वतीकण्ठाभरण पर प्रभाव

डा. जगमोहन

प्रस्तावना

ज्ञान की समृद्ध परम्परा विरासत में मिलती है। कोई भी कृति पूर्णरूप से मौलिक नहीं हो सकती है। व्याकरण शास्त्र का विशाल वाङ्मय इस तथ्य की पुष्टि में प्रमाण है। व्याकरण की मूलभूत चर्चा वेदों से आरम्भ होकर पाणिनि तक एक शास्त्र के रूप में विकसित हुई है। इसके अतिरिक्त भाष्य, टीकाओं, उपटीकाओं,का सूक्ष्म अध्ययन करने पर ये सभी पूर्ववर्ती से अत्यधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं। पूर्ववर्तियों का नाम ग्रहण किये बिना ही उनका सार ग्रहण करना इस परम्परा का शाश्वत सत्य है।

वर्तमान युग में पाणिनीय अष्टाध्यायी ही सर्वाङ्गपूर्ण और विद्वज्जनों द्वारा समादृत है। किन्तु पाणिनीयेतर व्याकरण सम्प्रदाय का ऐतिह्य भी पर्याप्त विस्तृत एवं गौरवपूर्ण है। इसी पाणिनीयेतर व्याकरण संप्रदाय की परंपरा में ग्यारहवी शताब्दी में भोज-रचित सरस्वतीकण्ठाभरण का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

भोज ने अपने से पूर्व के समस्त व्याकरण-विधान में से अच्छे से अच्छा चुनकर इस कण्ठाभरण के रूप में प्रस्तुत किया है। [1] भोज ने अपने व्याकरण की रचना से पूर्व "त्रिमुनि व्याकरणम्" की समृद्ध परम्परा का तो गहन अध्ययन किया ही, इसके अतिरिक्त वामन-जयादित्य विरचित काशिका प्रभृति पाणिनीय परम्परा के पोषक अन्य ग्रन्थों का भी अध्ययन किया है। यह उनके तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है।

भोज ने अपने ग्रन्थ में जिन स्थानों पर सूत्र–रचना आदि में परिवर्तन किया हैं ,उसकी दृष्टि भोज ने पूर्व परम्परा से प्राप्त की है।

महाभाष्यकार पतञ्जलि "सिध्यत्येवम् अपाणिनीयं तु भवति" [2] कहकर पाणिनि व्याकरण को ही उपयुक्त सिद्ध करते है , किन्तु महाभाष्यकार अपनी युक्तियों एवं तर्कों के आधार पर नवीन उद्भावनाओं एवं चिन्तन की धाराओं को जन्म देते हैं। जो परवर्ती आचार्यों के लिए आधारभूमि का कार्य करती है। सरस्वतीकण्ठाभरण का गम्भीर अनुशीलन करने पर हमें ज्ञात होता है कि भोजदेव भाष्यकार से अत्यन्त प्रभावित है। इसी तथ्य को प्रस्तुत लेख "महाभाष्य का सरस्वतीकण्ठाभरण पर प्रभाव" में प्रस्तुत किया गया है। जिसका वर्णन निम्न रूप में प्रस्तुत है-

तुल्यास्यस्थानप्रयत्नःसवर्णः- सरस्वतीकण्ठाभरण (1.1.108)
तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् - अष्टाध्यायी (1.1.8)

यथा- भोजदेव ने पाणिनि के सूत्र "तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्" के स्थान पर "तुल्यस्थानास्यप्रयत्नः" सूत्र बनाया है। जिसकी दृष्टि भोज को भाष्यकार से प्राप्त हुई है। इस सूत्र का अर्थ है- जिन वर्णों के ताल्वादि उच्चारण स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न दोनों एक समान हो तो उनकी परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है।[3] भोज एवं पाणिनि के कथ्य समान है, अन्तर केवल उनके प्रस्तुतीकरण में है। पाणिनि के सूत्र में गृहीत "आस्य" शब्द से ताल्वादि उच्चारण स्थानों का ग्रहण करने के लिए व्याख्या की आवश्यकता होती है, जो सुकुमारमति छात्रों के लिए क्लिष्ट कल्पना प्रतीत होती है। भोज अपने सूत्र में "स्थान" शब्द का ग्रहण कर देते हैं। जिससे स्पष्ट रूप से यह ज्ञात हो जाता है कि तुल्य स्थान और आस्य में होने वाले प्रयत्न अर्थात् आभ्यन्तर प्रयत्न वाले वर्णों कि परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है।

भोज सूत्र में "स्थान" शब्द का समावेश करने की दृष्टि भाष्यकार से प्राप्त करते हैं, जैसा कि भाष्यकार इस सूत्र की व्याख्या में कहते हैं—एवमपि व्यपदेशो न प्रकल्पते, आस्ये येषां तुल्यो देश इति। सिध्यति, सूत्रं तर्हि भिद्यते। यहाँ देश से स्थान का ग्रहण है जिसको भोज ने सूत्र में ग्रहण कर लिया है।

क्रियानिमित्तं कारकम् – सरस्वतीकण्ठाभरण (1.1.32)
कारके – अष्टाध्यायी (1.4.23)

पाणिनि "कारके" सूत्र का अधिकार आरम्भ करते है, किन्तु कारक को स्पष्ट नहीं करते हैं। इस विषय में रामशङ्करभट्टाचार्य लिखते हैं कि कारक का अर्थ व्याख्या-गम्य है। अत एव पाणिनि ने उसका लक्षण नहीं दिया है, केवल "कारके" सूत्र में शब्दशः निर्देश किया है।[4] भाष्यकार अपने विवेचन द्वारा क्रिया निष्पादक के रूप में कारक का व्याख्यान करते हैं।[5] भोज स्पष्टता के लिए भाष्य-गत व्याख्यान को समाहित कर "क्रियानिमित्तं कारकम्" सूत्र की रचना करते हैं।

नित्यं शित्यादयः - सरस्वतीकण्ठाभरण (1.3.67)
आयादय आर्धधातुके वा - अष्टाध्यायी (3.1.31)

आचार्य पाणिनि के सूत्र "आयादय आर्धधातुके वा" के स्थान पर भोज ने "नित्यं शित्यादयः" सूत्र की रचना की है। सूत्र का अर्थ है कि –आर्धधातुक की विवक्षा में 'आय' आदि प्रत्यय विकल्प से होते हैं।[6] वार्तिककार ने इस सूत्र को रखने पर दोष प्रदर्शित किये हैं। अतः वे सूत्र विन्यास में परिवर्तन का सुझाव प्रस्तुत करते हैं। यथा – सिद्धं तु सार्वधातुके नित्यवचनादनाश्रित्य वा विधानम्। परन्तु भाष्यकार वार्तिककार के नवीन सूत्र विन्यास से सन्तुष्ट नहीं हैं। वे उनके द्वारा प्रस्तावित सूत्र विन्यास में भी परिवर्तन की सलाह देते हैं। भाष्यकार के अभिमत सूत्र विन्यास को स्पष्ट करते हुए कैयट "शिति नित्यम् आयादयः" ऐसा सूत्र विन्यास करने को कहते हैं। भोज भाष्य के अभिप्रायानुरूप "नित्यं शित्यादयः" सूत्र की रचना करते हैं।

संख्याक्षशलाका परिणा द्यूतेऽन्यथावृत्तौ – सरस्वतीकण्ठाभरण (3.2.18)
अक्षशलाकासंख्या परिणा – अष्टाध्यायी (2.1.10)

भोज ने पाणिनि के सूत्र "अक्षशलाकासंख्या परिणा" के स्थान पर "संख्याक्षशलाका परिणा द्यूतेऽन्यथावृत्तौ" सूत्र की रचना की है। पाणिनि अक्ष, शलाका एवं संख्यावाची सुबन्तों का 'परि' के साथ अव्ययीभाव-समास का विधान करते हैं।[7] यह समास द्यूत-व्यवहार से सम्बन्धित है। जिसका ज्ञान हमे महाभाष्य की कारिका से होता है। यथा-
अक्षादयः तृतीयान्ताः पूर्वोक्तस्य यथा न तत्।
कितवव्यवहारे च एकत्वेऽक्षशलाकयोः।[8] - महाभाष्य (2.1.10)

भोज भाष्यकार की इस कारिका से दृष्टि पाकर भाष्योक्त अर्थ को सूत्र में समावेश कर लेते हैं, जिससे सूत्रार्थ का बोध सरलता से हो जाता है।

अनभिहिते सूत्र का प्रत्याख्यान-

"अनभिहिते" -अष्टाध्यायी (2.2.1) सूत्र का प्रत्याख्यान- यह विभक्ति प्रकरण का अधिकार का सूत्र है। इसका "कर्मणि द्वितीया" इत्यादि सूत्रों में अधिकार जाता है। इस सूत्र का अर्थ है –अनभिहित कर्मादि कारकों में द्वितीया विभक्ति होती है। अभिहित कर्मादि कारकों में नहीं। अनभिहित का अर्थ अनुक्त, अवाच्य, अकथित एवं अनिर्दिष्ट है। जहां तिङ्, कृत्, तद्धित एवं समास के द्वारा कर्मादि कारकों का अभिधान नहीं हुआ हो वहां द्वितीयादि विभक्तियां होती है। यथा-कटम् करोति, ग्रामं गच्छति इन उदाहरणों में तिङ् प्रत्यय कर्ता अर्थ में हुआ है। अतः यहाँ पर कर्ता अभिहित है, क्योंकि कर्म कारक में यहाँ पर तिप् नहीं हुआ है। कर्म के अनभिहित होने से कट और ग्राम में द्वितिया विभक्ति होती हो जाती है। कर्ता भूत देवदत्त आदि में "कर्तृकरणयोस्तृतीया" से तृतीया विभक्ति न होकर प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है। भोज ने इस सूत्र का प्रत्याख्यान किया है, क्योंकि भाष्यकार ने इसका प्रत्याख्यान किया है। भाष्यकार इस सूत्र का

प्रत्याख्यानकरते हुए कहते हैं – अनभिहितवचनमनर्थकमन्यत्रापि विहितस्याभावाद् अभिहिते। [9]

प्रदीपकार ने इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि अर्थावबोध के लिये लोक में शब्द का प्रयोग किया जाता है।वह अर्थ जब एक शब्द से प्रभावित हो जाता है, तब दूसरे शब्द प्रयोग नहीं होता है । सरस्वतीकण्ठाभरण के व्याख्याकार श्रीनारायण दण्डनाथ ने भी इसके प्रत्याख्यान को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि लोक में यह प्रचलित है कि जब एक शब्द से अर्थ का अभिधान हो जाता है तो पुनः दूसरे शब्द का प्रयोग उस अर्थ के कथन के लिये नहीं किया जाता है। अतएव अनभिहित वचन अनर्थक है। क्योंकि एक बार जब तिप् प्रत्यय द्वारा कर्ता अर्थ अभिहित हो जाने पर पुनः तिप् प्रत्यय द्वारा कर्मादि का अभिधान नहीं हो सकेगा । अतः भोज ने भाष्यकार का अनुसरण करते हुए अनभिहिते सूत्र का परिहार किया है।

भाष्य वचनों का समावेश

भाष्यकार इष्टसिद्धि के लिए अनेक न्यायों एवं युक्तियों का प्रयोग करते हैं। जिनका संपूर्ण व्याकरण परम्परा अत्यन्त आदर के साथ स्मरण एवं उपयोग करती है। भोज ने इस प्रकार के अनेक उपयोगी तथ्यों को अपने सूत्र पाठ में समाहित कर लिया है।

सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः [10] - सरस्वतीकण्ठाभरण (1.2.91)

उक्तार्थानामप्रयोगः [11] - सरस्वतीकण्ठाभरण (1.2.94)

यं विधिं प्रत्युपदेशोऽनर्थकःस विधिर्बाध्यते यस्य तु विधेर्निमित्तमेव नासौ बाध्यते [12] - सरस्वतीकण्ठाभरण 1.2.107

नानिष्टार्था शास्त्रप्रवृत्तिः [13] - सरस्वतीकण्ठाभरण 1.2.124

पर्जन्यवत्लक्षणप्रवृत्तिः [14] - सरस्वतीकण्ठाभरण 1.2.127

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि भोज ने महाभाष्य का गम्भीर अनुशीलन कर नवीन रीति से पाणिनीय विधान को अपने सूत्रों में प्रकट कर दिया है।

संदर्भ

1. संस्कृत व्याकरण का उद्भव एवं विकास - डा.सत्यकाम वर्मा, पृ० 338
2. पस्पशा, महाभाष्य
3. काशिका
4. डा.रामशङ्कर भट्टाचार्य,पाणिनीय व्याकरण का अनुशीलन,पृ० 132
5. साधकं निर्वर्तकं कारकसंज्ञं भवतीति वक्तव्यम्,महाभाष्य 1.4.23
6. काशिका
7. काशिका
8. महाभाष्य 2.1.10
9. महाभाष्य 2.2.1
10. महाभाष्य 2.2.1
11. महाभाष्य 2.2.1
12. महाभाष्य 2.2.1
13. महाभाष्य 2.2.1
14. महाभाष्य 2.2.1